

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 6 अध्याय 4: हंस-गुह्य स्तोत्र

14 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



एक एकाकी तपस्वी के गुप्त स्तोत्र से प्रसन्न होकर, ब्रह्माण्ड के स्वामी गरुड़ पर आरूढ़ होकर, तेजोमय और अष्टभुज रूप में अवतरित होते हैं, और प्रजापति दक्ष को उनके हृदय की अभिलाषा प्रदान करते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विङ्गम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। षष्ठ स्कन्ध का चौथा अध्याय अजामिल के उद्धार से हटकर सृष्टि के रहस्य की ओर मुड़ता है। राजा परीक्षित श्रीशुकदेव से प्रार्थना करते हैं कि लोकों के अनेक प्राणी किस प्रकार उत्पन्न हुए, इसका विस्तार से वर्णन करें, और ऋषि उत्तर में बताते हैं कि किस प्रकार प्रचेताओं के पुत्र दक्ष एक महान्

प्रजापति बने। इस कथा में हम सुनते हैं कि किस प्रकार प्राचीनबर्हि के उग्र पुत्रों को चन्द्रमा ने कोमलता से क्रोध से विरत किया, किस प्रकार दक्ष ने पर्वतों में जाकर हंस-गुह्य नामक गुप्त स्तोत्र से भगवान् की आराधना की, और किस प्रकार स्वयं भगवान् ने प्रकट होकर उन्हें आशीर्वाद दिया। इस समस्त कथा में एक शाश्वत शिक्षा गुँथी हुई है: कि परमेश्वर हमारी अपनी इन्द्रियों से भी अधिक निकट हैं, फिर भी उनके द्वारा अज्ञेय हैं, और बल या चातुर्य से नहीं, अपितु भक्ति से ही प्राप्त होते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 6 (षष्ठ स्कन्ध)
- अध्याय: 4 (चतुर्थ अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: प्रजापति दक्ष के हंस-गुह्य स्तोत्र
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव, राजा परीक्षित को सुनाते हुए; तथा कथा के भीतर चन्द्रदेव, प्रजापति दक्ष और स्वयं परमेश्वर
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित; और बाह्य कथा में नैमिषारण्य के ऋषिगण
- मुख्य स्थल: गंगा-तट जहाँ परीक्षित सुन रहे हैं; कथा के भीतर महाप्रलय के पश्चात् की पृथ्वी, तथा विन्ध्य के समीप पर्वतों में स्थित पवित्र अघमर्षण सरोवर
- केन्द्रीय विषय: दक्ष प्राचेतस का जन्म, उनकी तपस्या तथा हंस-गुह्य स्तोत्र, और भगवान् का प्रकट होकर उन्हें सन्तति का वरदान देना
- मुख्य श्लोक-परिधि: स्कन्ध 6, अध्याय 4, श्लोक 1-54
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

सृष्टि पर परीक्षित का प्रश्न

अध्याय का आरम्भ राजा परीक्षित की प्रार्थना से होता है। स्वायम्भुव मनु के काल में देवों, असुरों, मनुष्यों, नागों, पशुओं और पक्षियों की सृष्टि का वर्णन पहले केवल संक्षेप में हुआ था; अब राजा उसे विस्तार से सुनना चाहते हैं, और यह जानना चाहते हैं कि परमेश्वर ने किस शक्ति से आगे की सृष्टि रची (श्लोक 1-2)। इस सुन्दर प्रश्न को पाकर महान् ऋषि — यहाँ सूत गोस्वामी के माध्यम से एकत्रित ऋषियों को सुनाते हुए — प्रसन्न हुए और कहने लगे (श्लोक 3)।

प्रचेता और वनों का दहन

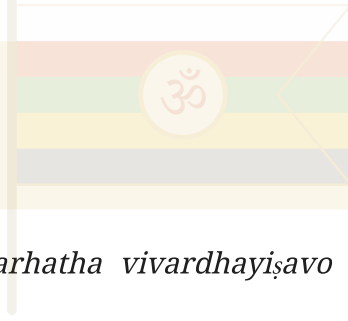
श्रीशुकदेव कथा को प्रचेताओं तक ले जाते हैं — राजा प्राचीनबर्हि के दस पुत्र। समुद्र के समान विशाल सरोवर से, जहाँ उन्होंने दीर्घकाल तक तप किया था, बाहर निकलकर उन्होंने पृथ्वी को वृक्षों से आच्छादित पाया, क्योंकि उनकी अनुपस्थिति में कृषि रुक गई थी। तप से प्रदीप्त उनका क्रोध भड़क उठा, और उन वनों को भस्म करने के लिए उन्होंने अपने मुखों से वायु और अग्नि प्रकट की (श्लोक 4-5)।



दीर्घ तप से उठे दस प्रचेता आच्छादित पृथ्वी पर क्रुद्ध होकर वनों को भस्म करने के लिए वायु और अग्नि छोड़ते हैं (श्लोक 4-5)।

वृक्षों को जलते देख, वनस्पति-जगत् के स्वामी चन्द्रदेव ने उन्हें शान्त करने के लिए हस्तक्षेप किया। उन्होंने कहा कि इन असहाय वृक्षों से शत्रुता रखना तुम्हें शोभा नहीं देता, क्योंकि तुम समस्त प्राणियों की रक्षा और वृद्धि के लिए नियुक्त हो, विनाश के लिए नहीं।

न द्रुमेभ्यो महाभागा दीनेभ्यो द्रोग्धुमर्हथ ।
विवर्धयिषवो यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥ ७ ॥



na drumebhyo mahā-bhāgā dīnebhyo drogdhum arhatha vivardhayiṣavo yūyaṁ prajānāṁ patayaḥ smṛtāḥ

अर्थ: हे महाभाग्यशाली पुरुषो, इन दीन एवं असहाय वृक्षों को हानि पहुँचाना तुम्हें शोभा नहीं देता, क्योंकि तुम प्राणियों के रक्षक कहे गए हो, जो उनकी वृद्धि के लिए नियुक्त हैं। (स्कन्ध 6, अध्याय 4, श्लोक 7)

चन्द्रदेव ने उन्हें स्मरण कराया कि श्रीहरि ने वृक्षों और अन्न को देवों तथा पितरों के भोजन के रूप में उत्पन्न किया है, कि समस्त प्राणी-क्रम एक-दूसरे का आहार करके ही जीवित रहता है, और कि पिता तथा भगवान् द्वारा सन्तति उत्पन्न करने का आदेश पाए हुए वे, जीवन के आधार को नष्ट न करें। वे अपने पूर्वजों द्वारा चले हुए मार्ग का अनुसरण करें और क्रोध का शमन करें; बुद्धिमान् व्यक्ति अज्ञानी का मित्र है, जैसे माता-पिता सन्तान के। सबसे बढ़कर, उन्होंने उन्हें यह सिखाया कि प्रत्येक प्राणी के भीतर अन्तर्यामी रूप में स्वयं भगवान् निवास करते हैं।

अन्तर्देहेषु भूतानामात्मास्ते हरिरीश्वरः ।
सर्वं तद्विष्ण्वमीक्षध्वमेवं वस्तोषितो ह्यसौ ॥ १३ ॥

antar deheṣu bhūtānām ātmāste harir īśvaraḥ sarvaṁ tad-dhiṣṇyam iṣādhvam evaṁ vas toṣito hy asau

अर्थ: भगवान् श्रीहरि, परम नियन्ता, समस्त प्राणियों के शरीरों में उनके अन्तरतम आत्मा के रूप में निवास करते हैं। अतः सम्पूर्ण सृष्टि को उन्हीं का धाम मानकर देखो; इसी से वे तुमसे सचमुच प्रसन्न होते हैं। (स्कन्ध 6, अध्याय 4, श्लोक 13)



कोमल चन्द्रदेव, जो वनस्पतियों के स्वामी हैं, प्रचेताओं को शान्त करते हैं और उन्हें मारिषा नामक कन्या विवाह में देते हैं (श्लोक 6-16)।

शान्त होकर प्रचेताओं ने अपने क्रोध को रोका और शेष वृक्षों को छोड़ दिया। तब चन्द्रदेव ने उन्हें अप्सरा प्रम्लोचा की पुत्री, वृक्षों द्वारा पालित सुन्दरी मारिषा को सौंप दिया और अपने धाम लौट गए। प्रचेताओं ने धर्म के अनुसार उससे विवाह किया, और उनसे, उस कन्या के द्वारा, दक्ष प्राचेतस का जन्म हुआ — जिनकी सन्तति से तीनों लोक सब ओर भर जाएँगे (श्लोक 16-17)।

दक्ष की तपस्या और हंस-गुह्य स्तोत्र

अब श्रीशुकदेव परीक्षित से ध्यानपूर्वक सुनने को कहते हैं कि किस प्रकार अपनी कन्याओं के प्रति स्नेही दक्ष ने पहले अपने मन की शक्ति से और फिर मैथुनी सृष्टि से प्राणियों को उत्पन्न किया। आरम्भ में उन्होंने केवल संकल्प से ही आकाश, भूमि और जल में रहने वाले देवों, असुरों, मनुष्यों और अन्य प्राणियों को रचा। किन्तु अपने वंश को अपनी इच्छानुसार बढ़ता न देख, वह महान् प्रजापति विन्ध्य पर्वत के समीप की पहाड़ियों में गए और दुष्कर तपस्या की। वहाँ अघमर्षण नामक पवित्र सरोवर में — जिसका अर्थ ही है पापों का प्रक्षालक — प्रतिदिन तीन बार स्नान करते हुए उन्होंने श्रीहरि की आराधना की, और हंस-गुह्य नामक गुप्त स्तोत्र से उनकी स्तुति की (श्लोक 18-22)।

जो स्तोत्र आगे आता है, वह भागवत के महान् दार्शनिक स्तोत्रों में से एक है। दक्ष उस स्वयं-प्रकाश परम को नमन करते हैं, जिनका सच्चा स्वरूप उन लोगों से छिपा है जो इन्द्रिय-विषयों को सत्य मान लेते हैं, और जो समस्त सामान्य ज्ञान-साधनों से परे हैं।

नमः परायावितथानुभूतये
गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे ।
अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभि-
निर्वृत्तमानाय दधे स्वयम्भुवे ॥ २३ ॥

namaḥ parāyāvitathānubhūṭaye guṇa-trayābhāsa-nimitta-bandhave adṛṣṭa-dhāmne guṇa-tattva-buddhibhir nivṛtta-mānāya dadhe svayambhuve

अर्थ: मैं उस अविनाशी चेतना वाले परम भगवान् को नमस्कार करता हूँ, जो तीन गुणों के आभास में बँधे जीव के सच्चे मित्र और कारण हैं, जिनका धाम अदृश्य है और जो गुणों की सत्ता में स्थिर बुद्धि से अगम्य हैं — उस स्वयम्भू परमेश्वर को मैं नमन करता हूँ। (स्कन्ध 6, अध्याय 4, श्लोक 23)

श्लोक-दर-श्लोक दक्ष भगवान् की निकटता और गूढ़ता के रहस्य को खोलते हैं। भगवान् जीव के साथ उसी शरीर में उसके नित्य मित्र के रूप में रहते हैं, फिर भी जीव उन्हें नहीं जानता — जैसे कोई दृश्य वस्तु उस नेत्र की ज्योति को नहीं देख सकती जो उसे प्रकट करती है। शरीर, प्राण और इन्द्रियाँ न स्वयं को जानती हैं, न उस आत्मा को जो उन्हें चेतन करती है; चेतन जीव इन सबको तथा प्रकृति के गुणों को जानता है, फिर भी उस अनन्त, सर्वज्ञ भगवान् को नहीं जान पाता। वे केवल शुद्ध मन में ही जाने जाते हैं, जब नाम-रूप का खेल शान्त हो जाता है; बुद्धिमान् उन्हें हृदय में विराजमान पाते हैं, यद्यपि वे अपनी अनेक शक्तियों से आवृत रहते हैं, जैसे अग्नि काष्ठ में तब तक छिपी रहती है जब तक पवित्र मन्त्रों से न प्रकट की जाए। जो कुछ शब्दों में कहा जा सके, बुद्धि से समझा जा सके, या इन्द्रियों से अनुभव किया जा सके, वह उनका स्वरूप नहीं है, क्योंकि वह सब गुणों का ही विस्तार है, जबकि वे तो केवल सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति और लय से ही संकेतित होते हैं (श्लोक 24-30)।

यहाँ दक्ष अपनी स्तुति के मर्म तक पहुँचते हैं। वे बताते हैं कि स्वयं परमेश्वर ही उन दार्शनिकों के हृदयों में विराजमान होकर, जो उनके विषय में विवाद करते हैं, उन्हें निरन्तर मतभेद की ओर प्रेरित करते हैं, जिससे कोई भी तर्क अकेले यह निर्णय नहीं कर पाता कि वे कौन हैं; फिर भी योग के द्वारा अन्तर्यामी आत्मा को खोजने वाला भक्त, और जगत् को केवल तत्त्वों में विभाजित कर उसके पीछे किसी व्यक्तित्व को स्वीकार न करने वाला विश्लेषक — दोनों अनजाने में उसी एक सत्य की परिक्रमा कर रहे होते हैं (श्लोक 31-32)। सिद्धान्त और वाद-विवाद परमेश्वर की ओर संकेत तो कर सकते हैं, परन्तु उन्हें प्राप्त केवल शरणागति ही कराती है — और यही इस स्तोत्र का अगला प्रमाण है, क्योंकि किसी दार्शनिक कौशल ने नहीं, अपितु एक हृदय के अखण्ड प्रेम ने ही भगवान् को उस सरोवर-तट पर बुलाया।

दक्ष प्रार्थना करते हैं कि वह अनन्त परमेश्वर, जो कृपावश अपने चरणों की शरण में आए लोगों की रक्षा हेतु नाम और रूप धारण करते हैं, मुझ पर प्रसन्न हों (श्लोक 33-34)।



पवित्र अधर्मर्षण सरोवर पर दक्ष तपस्या में स्थित होकर अदृश्य परमेश्वर को गुप्त हंस-गुह्य स्तोत्र अर्पित करते हैं (श्लोक 20-34)।

भगवान् प्रकट होते और वरदान देते हैं

इस प्रकार स्तुति किए जाने पर भगवान् — जो सदा अपने भक्तों के प्रिय हैं — उस पवित्र सरोवर के तट पर साक्षात् प्रकट हुए, जब दक्ष अभी भी उनकी स्तुति कर ही रहे थे। वे गरुड़ पर आरूढ़ होकर आए, उनके चरण पक्षिराज के कन्धों पर टिके थे, और उनकी आठ बलिष्ठ भुजाओं में चक्र, शंख, खड्ग, ढाल, बाण, धनुष, पाश और गदा शोभित थे। मेघ के समान श्याम, पीताम्बरधारी, प्रसन्न मुख और आनन्दपूर्ण नेत्रों वाले, वे वनमाला, श्रीवत्स-चिह्न और कौस्तुभमणि, महान् मुकुट और देदीप्यमान आभूषणों से सुशोभित थे। तीनों लोकों को मोहित करने वाले उनके रूप के चारों ओर नारद और नन्द आदि पार्षद तथा प्रमुख देवगण थे, और सिद्ध, गन्धर्व एवं चारण गान से उनकी स्तुति कर रहे थे। विस्मय और उमड़ते आनन्द से भरे दक्ष भूमि पर दण्डवत् गिर पड़े, उनकी इन्द्रियाँ आनन्द से इस प्रकार आप्लावित थीं जैसे पर्वतीय जल-धाराओं से नदियाँ, और वे एक शब्द भी न कह सके (श्लोक 35-41)।

तब उस सन्तति के अभिलाषी भक्त प्रजापति से भगवान् विष्णु — प्रत्येक हृदय के ज्ञाता — ने कहा।

प्राचेतस महाभाग संसिद्धस्तपसा भवान् ।

यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावं परं गतः ॥ ४३ ॥

prācetasa mahā-bhāga saṁsiddhas tapasā bhavān yac chraddhayā mat-parayā mayi bhāvaṁ param gataḥ

अर्थ: हे प्रचेताओं के महाभाग्यशाली पुत्र, तुम अपनी तपस्या से सिद्ध हो गए हो, क्योंकि मुझ पर पूर्णतः स्थित श्रद्धा के द्वारा तुमने मेरे प्रति परम प्रेम को प्राप्त कर लिया है। (स्कन्ध 6, अध्याय 4, श्लोक 43)

भगवान् ने स्वयं को प्रसन्न घोषित किया, क्योंकि दक्ष का तप सृष्टि की वृद्धि में सहायक था, जो स्वयं भगवान् की ही इच्छा है। उन्होंने कहा कि ब्रह्मा, शिव, स्वयं दक्ष, मनुगण और प्रमुख देव — ये सब समस्त प्राणियों के कल्याण हेतु कार्य करने वाली उन्हीं की गौरवमयी विभूतियाँ हैं। उन्होंने प्रकट किया कि तप उनका हृदय है; उपासना उनका शरीर; भली प्रकार किए गए यज्ञ उनके अंग; और देवगण उनके प्राण। सृष्टि से पूर्व केवल वे ही थे, शुद्ध चेतना और अव्यक्त, जब तक कि माया के द्वारा तीन गुणों का यह जगत् उनमें प्रकट न हुआ, और ब्रह्मा उसके स्रष्टा के रूप में प्रकट न हुए। तब भगवान् ने दक्ष को आदेश दिया कि वे प्रजापति पञ्चजन की पुत्री असिक्नी को पत्नी रूप में स्वीकार करें, और उसके द्वारा प्रचुर सन्तति उत्पन्न करें, जिससे उसके पश्चात् सब प्राणी बढ़ते रहें और उन्हें अपनी आराधना अर्पित करें (श्लोक 43-53)।



भगवान् दण्डवत् दक्ष को सन्तति का वरदान देकर, स्वप्न में देखी वस्तु के समान दृष्टि से अन्तर्धान हो जाते हैं (श्लोक 42-54)।

इस प्रकार कहकर, विश्व के पालक भगवान् श्रीहरि, दक्ष के देखते-देखते ही, स्वप्न में देखी वस्तु के समान उसी स्थान पर अन्तर्धान हो गए (श्लोक 54)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. रक्षकों को पोषण करना है, विनाश नहीं। प्रचेताओं को दिया चन्द्रदेव का उपदेश शक्ति को सेवा के रूप में पुनः परिभाषित करता है: जो प्राणियों पर नियुक्त हैं, वे जीवन की वृद्धि के लिए हैं, और भगवान् की सच्ची आराधना यही है कि उन्हें समस्त प्राणियों के भीतर निवास करते देखा जाए (श्लोक 7, 13)।
2. परमेश्वर इन्द्रियों से भी निकट, फिर भी उनसे परे हैं। हंस-गुह्य स्तोत्र सिखाता है कि भगवान् जीव के साथ उसी शरीर में उसके प्रियतम मित्र रूप में रहते हैं, किन्तु इन्द्रिय, मन या वाणी से अगम्य हैं — वे केवल शुद्ध हृदय में ही जाने जाते हैं (श्लोक 23-27)।
3. परमेश्वर से पृथक् कुछ भी नहीं। प्रत्येक कर्म और कारण का मूल ब्रह्म में है, जो सबसे पूर्व विद्यमान थे और समस्त कारणों के कारण हैं; सम्पूर्ण जगत् केवल उन्हीं का संकेत करता है (श्लोक 29-30)।

4. भक्ति तपस्या को पूर्ण करती है। दक्ष का दीर्घ तप केवल अपनी कठोरता से नहीं, अपितु इसलिए फलित होता है कि वह भगवान् पर पूर्णतः स्थित प्रेममयी श्रद्धा में परिपक्व हुआ (श्लोक 43)।

5. सृष्टि भगवान् का ही कार्य और इच्छा है। महान् प्रजापति उन्हीं की विभूतियाँ हैं, और सन्तति उनकी माया के द्वारा उत्पन्न होती है; सृष्टि का कर्तव्य भी उनके प्रति समर्पण का एक रूप है (श्लोक 44-45, 53)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में एक सुन्दर सन्तुलन है। इसका आरम्भ क्रोध से होता है — प्रचेता वनों को दग्ध करते हैं — और अन्त कृपा से, जब भगवान् एक विनम्र उपासक को आशीर्वाद देने अवतरित होते हैं। इन दोनों के मध्य एक ही मोड़ खड़ा है: अपनी इच्छा को थोपने के बजाय समस्त वस्तुओं में परमेश्वर को देखने का निर्णय। चन्द्रदेव इसे प्रचेताओं को एक वाक्य में सिखाते हैं, और दक्ष इसे एक एकाकी सरोवर के तट पर वर्षों की तपस्या में जीकर दिखाते हैं। हंस-गुह्य स्तोत्र “गुप्त” कहलाता है क्योंकि यह उस एक की स्तुति करता है जो समस्त द्रष्टा के भीतर छिपे हैं, उन्हीं साधनों से अगम्य जिन पर हम सर्वाधिक भरोसा करते हैं। और फिर भी वे दूर नहीं हैं। भक्ति के शुद्ध होते ही वे प्रकट हो जाते हैं — इसलिए नहीं कि प्रार्थना उन्हें विवश करती है, अपितु इसलिए कि प्रेम ही वह वातावरण है जिसमें वे स्वयं को प्रकट करने में आनन्दित होते हैं। दक्ष केवल सन्तान चाहते थे; भगवान् ने उन्हें वह, और उससे कहीं अधिक — अपने स्वरूप का दर्शन — दिया। प्रायः ऐसा ही होता है: हम अपनी छोटी-सी माँगें लेकर भगवान् के पास आते हैं, और वे स्वयं को देकर उत्तर देते हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज हंस-गुह्य स्तोत्र से एक शिक्षा लें और उसे अपनी दृष्टि को आकार देने दें। जैसे चन्द्रदेव ने प्रचेताओं से आग्रह किया, अपने चारों ओर के मनुष्यों और प्राणियों को भगवान् के धाम रूप में देखें, जो प्रत्येक के भीतर अन्तरतम आत्मा रूप में विराजमान हैं। किसी के प्रति भी शीघ्रता या क्रोध में कुछ करने से पूर्व रुकें और शान्त मन से स्मरण करें: *इस प्राणी के भीतर भी भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं।* उस स्मरण को अपने वचनों को कोमल और हृदय को स्थिर करने दें, और दिन की छोटी-से-छोटी करुणा को उस एक की आराधना के रूप में अर्पित करें जो सबमें निवास करते हैं।

उपसंहार

षष्ठ स्कन्ध का चौथा अध्याय सृष्टि के वर्णन को भक्ति के एक कार्य में उठा देता है। चन्द्रदेव के कोमल उपदेश, दक्ष के जन्म, और सबसे बढ़कर गुप्त हंस-गुह्य स्तोत्र के द्वारा हम जानते हैं कि परमेश्वर प्रत्येक जीव के अन्तरतम मित्र हैं, इन्द्रियों से छिपे, फिर भी शुद्ध प्रेम से प्राप्त। पवित्र सरोवर पर दक्ष की तपस्या, जिसका शिखर भगवान् का गरुड़ पर तेजोमय आगमन है, यह दिखाती है कि तप श्रद्धा में अपनी पूर्णता पाता है और भगवान् भक्ति का उत्तर हृदय की अभिलाषा तथा अपने स्वरूप के दर्शन — दोनों देकर देते हैं। जैसे-जैसे यह स्कन्ध दक्ष के महान् वंश की ओर आगे बढ़ता है, हम इस स्तोत्र का चिरस्थायी आश्वासन साथ ले चलते हैं: कि जो मन या वाणी से अगम्य हैं, वे उस हृदय के निकट तत्क्षण आ जाते हैं जो उनसे प्रेम करता है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

संदर्भ तथा साभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), षष्ठ स्कन्ध, चतुर्थ प्रवचन।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-6-chapter-4-hamsa-guhya-prayers-daksha-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट